

॥ भारतीय दर्शन में संस्कृति एवं धर्म ॥

चावडा पायल वी.

M.Phil. (तत्त्वाचार्य)

Mo. 8511849374

Email – payalchavada8511@gmail.com

श्रीसोमनाथ संस्कृत युनिवर्सिटीगुजरात ,वेरावल ,

प्रस्तावना -:

दर्शन अर्थात् साक्षात्कार । “दर्शनं साक्षात्करणम्” अपि च दृश्यते अनेन इति दर्शनम् । दर्शन शब्द का अंग्रेजी में अनुवाद प्रायः दो ग्रीक “ सोफिया “ ओस “फिलोस्” फिलोसोफि शब्द से किया जाता है। यह शब्द : पदों से बना है। जिनका क्रमशः ‘स’ और ‘प्रेम’ अर्थ हैं :वती या विद्या देवीका अर्थ हुआ ‘फिलोसोफी’ :। अतः – विद्या प्रेम या ज्ञान के प्रति अनुराग । मानव मनमें स्वयं को और बाह्य जगत् को जानने की नैसर्गिक प्रवृत्ति होती है । दार्शनिक चिंतन मानव की मूल प्रवृत्ति है । प्रत्येक व्यक्ति को कोई न कोई जीवन – दृष्टि – जीवन , मूल्य या दर्शन अवश्य होता है ।

भारतीय दर्शन प्रायः अपरोक्षानुभूति या आत्मसाक्षात्कार को प्रधान और बौद्धिक चिंतन को गौण मानता है । दर्शन शब्द का अर्थ ही है साक्षात् देखना अर्थात् परमतत्त्व का साक्षात्कार या अपरोक्षानुभव । आत्मा को जानने आत्म)नां विद्धि – (यह भारतीय दर्शन का उद्घोष है ।

मनुष्य अपनी नैसर्गिक स्थिति को वास्तविकता में जो सुख – जीवन ,ख:दु - मरण आदि का द्वन्द्व देखता है उससे उसे उस स्थिति की अपर्याप्तता स्पष्ट हो जाती है । और इस गोचरता से परे वह गवेषणा करना चाहता है । फलतः नैसर्गिक यह :क – आनुभविक – स्तर से गति कर व्यवहार की कुशलता या उपयोगिता के क्षेत्र में पहुँचता है । यह उसकी स्थूल अर्थमूलकता का क्षेत्र है जो सभ्यता– दक्षता , तकनिक के जन्म व विकास को सम्भव बनाता है । किन्तु इस स्थूल अर्थ जगत् में मनुष्य को अपनी पर्याप्तता का बोध नहीं हो पाता क्योंकि , उसका बाह्य वातावरण प्रभावित :इससे अधिकांशतः हो पाता है । वह इससे भी आगे मूल्यों या आदर्शों की सूक्ष्म अर्थों की क्षेत्र की ओर अग्रसर होता है । उसके आदर्शमूलकआत्मबोध का यह क्षेत्र मानव – संस्कृति के उद्भव और विकास से संबन्धित है ।

दर्शन और धर्म का घनिष्ठ सम्बन्ध है । भारतीय दर्शन के कई सम्प्रदाय धार्मिक सम्प्रदाय भी हैं । महर्षि याज्ञवल्क्य का उपदेश आत्मा वा अरे द्र “ष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य” :¹ भारतीय दर्शन और धर्म का मूलमंत्र है । इसका अर्थ है आत्मा साक्षात् अनुभव करने योग्य है और यह अनुभव श्रवण तथा निदिध्यासन से प्राप्य है । चार्वाक मत को छोड़कर लगभग सभी भारतीय दर्शनो ने इसे न्यूनाधिक रूप में स्वीकार किया है ।

¹ बृह. उप. २/४/५

● भारतीयदर्शन में संस्कृति –

– प्रत्येक संस्कृति में एक विश्वदृष्टि होने के पिछे मानवकी मूल्य चेतना का यहीं अनिवार्य पक्ष कार्यरत रहता है। अतसंस्कृतियों में जन्म लेनेवाली और इसी लिए उनके विशिष्ट मूल्यों के प्रति सजग रहनेवाली : में यह उपरोक्त कथन महत्वपूर्ण है। दार्शनिक परंपराओं के बारे

➤ संस्कृतिका अर्थ :-

संस्कृति मनुष्यमें मूल प्रवृत्ति मूलक या प्राकृतिक नहीं हैंवह मनुष्य द्वारा अर्जित हैं। वह एक साथ ही , लब्धि हैं। और परंपरा रूप में सामाजिक उप ,वैयक्तिक अर्जन हैं और व्यक्ति के लिए प्रेरणाप्रद व फलप्रद हैं – संस्कृति का अर्थ है मूल्यों की आत्मबोध की परंपरा। ,

– मूल्य मानव मूल्याङ्कन के अव्यवहित विषय हैं। मानव चेतना में मूल्योंके उन्मेष की प्रक्रिया भी हैं। इस उन्मेष – प्रक्रिया को सामाजिक - ऐतिहासिक वास्तविका मूल्यवान सिद्ध हुए अनुभवो की अभिव्यक्ति और सम्प्रेषण द्वारा मिलती हैं। ये अनुभव आत्मचेतन और वैयक्तिक होते हैं और प्रतिको के रूप में सामाजिक सम्प्रेषण व परम्परा में प्रविष्ट होते हैं। अत- इस दृष्टि से संस्कृतिका अर्थ हुआ मूल्य : गवेषणा और अनुभव की सामाजिक अभिव्यक्ति जबकि मूल्य – बोध जिस विशिष्ट प्रक्रिया से होकर गुजरता है उसी से इतिहास को उसका अर्थ मिलता है। यहां यह भी द्रष्टव्य है की मनुष्य द्वारा रचित उसका अपना उपादानमूलक पदार्थिक परिवेश अन्तत- उसके विशिष्ट सांस्कृतिक संस्कार या मूल्य :बोध पर ही निर्भर करता है।

त ,भी मान लिया जाता है। जिसमें उद्योग (पैटर्न) कभी कभी संस्कृति को एसा संस्थानकनीकी , – सामाजिक व्यवस्था आदि एकरूपेण समाविष्ट होते हैं। यह मत ठीक ठीक स्पष्ट नहीं है। किन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि इस तरह की एकरूपता के फलस्वरूप संस्कृति की आकारिकता बढने और फलतउसकी सृजनशीलता : के घटने का खतरा पैदा होता है। सांस्कृतिक एकरूपता वैयक्तिक अनुभवमें अधिष्ठित होती है जबकि तार्किक , ऐतिहासिक होती -आकारिक या व्यवस्थामूलक एकरूपता की प्रवृत्ति व्यक्ति निर्पेक्षता की और यहा तक की परा अधिष्ठान वैयक्तिक अनुभव ही होता है। हैं। सभी सांस्कृतिक अनुभवो का

➤ संस्कृति और ऐतिहासिक प्रक्रिया –

जिस तरह संस्कृति मात्र नृतत्वशास्त्रीय या समाजशास्त्रीय विवरण नहीं है उसी तरह इतिहास भी न , – तो मृत् बीता हुआ है न तो उसका विवरण मात्र ही है। यहा दो बाते द्रष्टव्य हैं एक मानव मनस् का विकास सदैव आत्मबोधात्मक है क्योकि मनस् आत्मरूप है और दूसरी उसका यह विकास इतिहास का सही आशय व्यक्त करता है। मानसिक विकास को आत्मबोधात्मक मानने से उसे विशिष्ट व्यक्ति केन्द्रित मानने का अर्थ नहीं है। निआत्म बोधात्मक भी है। ऐतिहासिक प्रक्रिया के सन्दर्भ में सन्देह मनस् एक नहीं अनेक है और वे सभी: जिन दो मतों का उल्लेख उपर हुआ है वे उक्त अमूर्त प्रकृति के इतिहास पर लागू हो सकते हैंकिन्तु तद् , – इतिहास में निहित बौद्धिकता को प्रकृति :इतिहास भी वास्तविक न होकर अमूर्त होता है। अत विज्ञान की

बौद्धिकता मानना भ्रमात्मक है। जैसा की बोसांके ने कहा है इतिहास के अन्तर्गत मनुष्य के व्यक्तित्वक्रिया व , बुद्धि में उसका जो भाव प्रकट होता है उसे हम सापेक्षता और अनिवार्यता के अमूर्त प्रत्ययो में खोना नहीं चाहते :। फलतसंस्कृति के सन्दर्भवाला इतिहास सीधे मनस् के आत्मबोद्धात्मक जीवंत अनुभव – क्षेत्र से जोड़ता है।

मानस के उत्क्रांतिमूलक विकास से ही संस्कृति के उच्चतर स्तरों का विकास सम्भव होता है। सत्य , गति सदैव नाना शिव या प्रेम या स्वतंत्रता जैसे उच्चतर मूल्यों की जीवन में अभिव्यक्ति देने की दिशा में प्र , सुन्दर रूपात्मक बाह्य निसर्ग के अन्तर्विरोधी तत्वों के एक सामञ्जस्यस्थापित कर सकने की मानव – क्षमता पर ही निर्भर करती है

➤ संस्कृति : अर्थाभ्युपगम और रूप

मान्यातीन प्रकार के : हमारी संस्कृति में यदि देखा जाये तो संस्कृति की अर्थाभ्युपगम क्रिया में मूलत : : अर्थाभ्युपगम दृष्टिगोचर होते हैं

१) परिवर्तनमूलक

२) निर्देशमूलक

३) स्तरमूलक

संक्षेप में परिवर्तनमूलक अर्थाभ्युपगम एक एसी विकासमान प्रक्रियाको उद्भासित करते हैं जिसमें स्वाभाविक असता होती है – इसके अन्तर्गत विकास का रूप अर्थवत्ता का होता है भाववत्ता का नहीं।

निर्देश मूलक अर्थाभ्युपगम उन विभिन्न दिशाओं को उद्भासित करते हैं जिधर बाह्यस्थ प्रकृति और अन्तस्थ मनस् अनुभवों को अपनी और खिंचते हैं या स्वयं उनकी और खिंचते हैं।

स्तरमूलक अर्थाभ्युपगम आत्मबोध या अनुभव के उन अंश भेदों के उद्भासक हैं जो कमोवेश शुद्ध चेतना तक पहुँचने की सक्रियता प्रकट करते हैं। इस प्रकार संस्कृति का अर्थाभ्युपगम और रूप दर्शाया गया है।

➤ संस्कृतियों में संस्कृति

संस्कृतियों के बीच भेद पेदा करने वाले तत्त्व सामान्यता दो हैं :

१ अपूर्ण संप्रेषण।

२ स्वार्थों की टकराहट।

संस्कृति को इस तरह समझने और जानने में ही सांस्कृतिक विकास निहित है। मानवीय आत्मचेतना के विकास की प्रक्रिया ही इस तरह है की उसमें अपूर्ण चेतना पूर्ण चेतना में विकसित होना चाहती है। यही मानव चेतना की अमिट लालसा और अन्वेषण का सुख है और साथ ही उसमें अन्तर्निहित विरोधाभास भी और

नि- सन्देह मनुष्य को इसी तरह समजा जा सकता हैं। मनुष्य और संस्कृति की ठीक: ठीक समज के लिए हमें मानव इतिहास को इसी रूप में समजना चाहिए।

● भारतीय दर्शन में धर्म

भारतीय दर्शन में धर्म के स्वरूप के विषय में अनेक मत प्राप्त होते हैं। इनमें एक प्रसिद्ध मत यह है कि धर्म एक ही हो सकता है अनेक नहीं। धर्म शब्द संस्कृत भाषा का शब्द है जो धृ धारणे एवं मन् प्रत्यय से , इन दोनो ही , निष्पन्न होता है। इसका अर्थ यह है कि जीवन का चाहे व्यक्तिरूप को तथा सामाजिक रूप को रूप में जीवन के उनतत्त्वो एवं कारको के धारण करने से व्यक्ति एवं समाज का निर्माण होता है जिनके धारण , भारतीय दर्शन में धर्म का जो लक्षण किया गया है : करने से समाज तथा व्यक्ति श्रेष्ठ एवं महान् कहलाता है। अतः उसको प्रस्तुत करना आवश्यक है।

➤ धर्म का लक्षण

भारत के प्रथम समाजशास्त्री मनु ने धर्म का लक्षण प्रस्तुत किया है कि धर्म धारण करना , मद , क्षमा , , इन्द्रियों पर संयम करना , शुद्ध एवं पवित्र रहना , चोरी न करना , मोह आदि वृत्तियों का दमन करना , लोभ ज्ञानवान का धारण करना ही धर्म का लक्षण है। , उत्तम बुद्धि² इसी प्रकार मनु ने धर्म का संक्षिप्त लक्षण करते हुए कहा है कि – आत्मन , प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥ मनु ॥ आत्मा के अनुकूल आचरण करना चाहिए : – यहा पर आत्मा का अर्थ है , और दूसरो के प्रतिकूल आचरण नहीं करना चाहिए किसी भी परिस्थिति में सम्मुख आने पर जो अन्तर्ज्ञान उत्पन्न होता है उसके अनुसार आचरण करना ही धर्म कहलाता है। , इसे धर्म का साक्षात् लक्षण माना है।

वैशेषिक दर्शन में धर्म का लक्षण किया है – जिस आचरण से लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति होती है , उसे धर्म कहते हैं।³ मीमांसा दर्शन में धर्म का लक्षण किया है कि जो अच्छे कर्म करने की और प्रेरित करता है वह धर्म है।⁴

➤ धर्म और दर्शन

गीता के प्रथम अध्याय का प्रथम श्लोक –

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः। :
मामका॥ : पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय :⁵

गीता का अंतिम श्लोक –

² धृतिक्षमादमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहम् ।

धिर्विद्या सत्यमक्रोधोदशकं धर्म लक्षणम् ॥ मनु. २-२५

³ यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः । वैशेषिक सूत्र

⁴ चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः । पूर्वमीमांसा सूत्र -१.१.२

⁵ श्रीमद्भगवद्गीता - १/१

यत्र योगेश्वर कृष्णो :यत्र पार्थोऽधनुर्धरा :
तत्र श्रीर्विजयोर्भूतिर्ध्रुवानितिर्मतिर्मम ॥⁶

मम धर्म अर्थात् मेरा धर्म इन्हीं दो शब्दों में गीता दर्शन सम्पुटित हैं। इससे भी यह प्रमाणीत होता है अनुस्यूत हैं। यहां का दार्शनिक पहले धार्मिक है की भारतमें धर्म और दर्शन एक दूसरे से फ़िर दर्शनिक हैं। धर्म और दर्शन दोनों में अन्योन्याश्रय सम्बद्ध हैं। यहां के दर्शन व्यवहारिक होने के कारण जीवन से सम्बद्ध हैं। यहां दर्शन और धर्म का तथा तत्वज्ञान का युगज्व युग बदलता है तब युग युग से गहरा सम्बद्ध रहा है। किन्तु-धर्म भी बदल जाता है। आज हम भारतीयों का जीवन एक अभूतपूर्व क्रांति से गुजर रहा है। आज आमूलक्रांति की सम्भवाना बनी है जो पूर्व से ज्ञात हैवे छुट रहे हैं। भारतीय धर्म और दर्शन ने हाथ में हाथ मिलाकर अनेक झेला है। अब उसका भी अभिनव रूप हमारी सामने आने परिवर्तनो और प्रहारो कोही वाला है जो इस एकत्व भावकावहीं सच्चा दार्शनिक है। भारतीय दार्शनिक ,वहीं धार्मिक है ,विराट विश्वसे एकत्व का अनुभव करता है , उसकी सत्ता है। ब्रह्म या धार्मिक ईश्वर से बाहर कुछ भी नहीं है। यह सब वहीं तो है। विश्वमें

इनके बावजूद भारतीय दर्शन समन्यवयवादी एवं आशावादी है। विपरीत से विपरीत परिस्थितिको भी परमात्मा के मार्ग में भारतीय दर्शन बाधा नहीं मानते।

➤ दर्शनो में धर्म -

भारतीय दर्शन छ प्रकारका माना गया है। प्रत्येक दर्शनमें धर्म का वर्णन दिखाई पडता है। इनमें से कुछ दर्शन में वर्णित धर्म का विवरण निचे मुजब बताया गया है -

सांख्यदर्शन की यह मान्यता वेदो और उपनिषदों की अनुसार ही है। क्यों की मुण्डकोपनिषद में भी कहा है की वह ईश्वर सर्वज्ञ हैसब प्रकार के ज्ञान का प्रदाता है। तथा वहीं सबसे बडा तप है।⁷ इसी प्रकार महाभारत के शान्ति पर्व में कहा है की धर्मवैराग्य और ऐश्वर्य आदि की पराकाष्ठा ईश्वरमें ही है। ,ज्ञान .⁸ इस प्रकार सांख्य दर्शन में धर्म का विवरण क*िया गया है।

➤ योग दर्शन --

योग दर्शन में भी ईश्वर की सत्ता को स्विकार करते हुए कहा है की परम सत्ता ईश्वर की ही है। ईश्वर के साक्षात्कार से ही कैवल्य की प्राप्ति होती है। समाधि प्राप्ति के उपायों में सर्वप्रथम ईश्वर प्रणिधान को बतलाया है अर्थात् ईश्वरके लिए सबकुछ समर्पित कर देना।⁹ एसा योग दर्शन में धर्म के विषय में बताया गया है। वेदान्तदर्शन में धर्म -

⁶ श्रीमद्भगवद्गीता - १८/७८

⁷ यह सर्वज्ञ सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः , मुण्डकोपनिषद - १/१/९

⁸ ईश्वरसिद्धि - सिद्धाः सान्ध्यमात्रेश्वरस्य सिद्धस्तु श्रुति, स्मृतिषु सर्वसमते इत्यर्थः । सां.सु.

⁹ ईश्वर प्रणिधानाद्वा । यो.सु. १/२३

वेदान्त दर्शन में ईश्वर और धर्म के बारे में सिद्ध किया है की सृष्टि की रचना तथा जन्मादि ईश्वर के द्वारा सिद्धि सम्भव है इसी लिए उस ब्रह्म की होती है।¹⁰ धर्म का उद्देश्य साधक और ईश्वर के साथ तादात्म्य – सम्बद्ध उपस्थित करना है। मानव धर्म साधन के द्वारा आराध्य वस्तु के प्रति अपनापन तथा निकटतम का भाव व्यक्तकरना चाहता है। धर्म के इस उद्देश्य की पूर्ति भावना से ही सम्भव है। ज्ञानधर्म की इस मांग की अवहेलना करता है।

विश्व में अनेको ऐसे धर्म हैंति पूजा की परिपाटि हैं। मानव पत्थर मूर्ति को ईश्वर का प्रतिरूप जहा मू, – समजता है। बुद्धि पत्थर जैसे निर्जीव और ठोस पदार्थ पर आत्म समर्पणप्रेम आदि भावनाओको ,श्रद्धा , प्रदर्शित करने को तत्पर नहींरहती हैं त्थर को भी जिसके फल स्वरूप प ,परन्तु यह भावना का ही चमत्कार है , ईशवर् का प्रतिक समजकर साधक धार्मिकता का परिचय देता है। इसमें भी यह सिद्ध होता है की धर्म के लिए भावना ही प्रधना है।

अर्थात् कहनेका तात्पर्य यह है की –

धर्म जोडता है तोडता नहीं ॥

॥ उपसंहार ॥

भारतीय का सही सांस्कृतिक एकीकृतरूप उसकी सामाजिक परम्परा में मिलता है। तथा धर्मोंमें जीवन जीने का तरीका मिलता है। भारतीय दर्शन के इतिहास में संस्कृधर् को सम्मिलित किय अगया है। और और धर क्या है धर्म है वो संस्कृति को टिकाने साधन ? है। और संस्कृति से ही मानव की मानवता का पता चलता है। हमारे दर्शनों में संस्कृति जीवन नीना सिखाति है तथा धर्म जीवन कैसे जीया जाये उसका मार्ग दर्शाता हं। भारतीय परंपरा में एक प्रकार से संस्कृति को आत्मा और धर्म को प्राण कहा गया है। हमारे भारतीय दर्शनोमें संस्कृति के बारे में बताया है सुसंस्कारो से हमारी लुप्त होती हुई संस्कृति का निर्माण करनेमें और ईसमें धर्म मार्ग निर्देश करता है।हमारी भारतीय संस्कृति में जैसे समय समय पर धर्म की आवश्यकता रहती है। यथा ---

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थामधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

जब जब धर्म का नाश होता है तथा अधर्म बढ जाता है तब मैं मेरी आत्मा का सर्जन करता हूं। ये भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को गीता का जब उपदेश देता है तब बता है ओर आगे भी कहते हैं की ...

पवित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृतां ।

धर्म संस्स्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

स्वधर्म में रहनेवाले सत्पुरुषोके रक्षण करने के लिए दुष्ट कर्म करनेवाले लोगो का नाश करने के लिए तथा स्वधर्म की स्थापना करने के लिए मैं युग – युग में अवतार को धारण करता हूं ॥

¹⁰ जन्माध्यस्य यतः - ब्रह्मसूत्र, १/१/२

अनेक कारण से वर्तमान भारत में भारतीय सरकार एवं उसके संविधानमें धर्म – निरपेक्षता महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। इसका शाब्दिक अर्थ हैं की धर्म की अपेक्षा रहितता। और इसी तरह संस्कृति मतलब परिवर्तन। आज का युग संस्कृति और धर्म क्या हैं पर आज उसे जीसकी प्रब ये समजना ही छोड दिया हैं। ?ल आवश्यकता हैं , – वह संस्कृति एवं धर्म ही दे सकते हैं। वह आवश्यक वस्तु हैं अतिन्द्रिय परमसत्ता की स्वीकृति। इस सत्ता की अभिव्यक्ति हैं – व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और समष्टिगत एकता मानवजाति की एकता। मानवजाति की यही एकता संस्कृति और धर्म के स्वरूप का निर्धारणका आधार हैं। भारत में अनेक अवसरो पर अथवा अनेक सुधारको द्वारा एसा प्रयास किया जाता हैं की विश्व को एक बनाया जाये क्योकि भिन्न भिन्न संस्कृति और धर्म को माननेवालोने अनेक समस्याए उत्पन्न की हैं। उसके कारण अनेक विद्वानोने उसकी आलोचना की हैं। परन्तु समय समय पर यह प्रयास होता हैं की संस्कृति तथा धर्मों के प्रमुख सिद्धान्तो को सम्मिलित करके एक विश्व की स्थापना की जाए।

समकालिन भारतीय दार्शनिक एवं सुधारको में महर्षि दयानन्दश्री अरविंद और स्वामिविवेकानन्द , कीया की सम्प्रदायो से आदि अनेक विद्वानोने भी यह प्रयास उत्पन्न हुई समस्याओं का समाधान होना चाहिए। उनके लिए अनेको प्रयास किये गये हैं ताकि सर्वमान्य संस्कृति तथा धर्म की स्थापना की जा शके। जब तक संस्कृति तथा धर्म का वैज्ञानिक स्वरूप अथवा धर्म का अर्थ वैधारकमें कारक माने जाते रहे जिनको जीवन , धारण करना आवश्यकहैं। जिनके बीना आध्यात्मिकआधिदैविक विश्वके उन्नति सम्भव नहीं हैं ,आधिभौतिक , सम्प्रदाय ,तब तक ही संस्कृति संस्कृति और धर्म धर्म हैं। निष्कर्षरूपमें यह कहा जाता हैं की सार्वभौमिक सम दाय के साथ संस्कृतिशब्द आग्रह को जन्म देता हैं। यद्यपि प्रत्येक सम्प्रतथा धर्म शब्द को लिखा हैं वह केवल इस लिए लिखा हैं की संस्कृति परिवर्तन और धर्म शब्द सम्प्रदाय के पर्याय के रूप में रूढ हो गया हैं। संस्कृति तथा धर्म का यह प्रवाह सतत बना रहेगा तो इसको समाप्त करना सम्भव प्रतीत नहीं होता हैं।

॥ अस्तु॥

॥ सन्दर्भसूचि ॥

१. भारतीय दर्शनशास्त्र का इतिहास
 २. भारतीय दर्शन – Indian philosophy
 ३. भारतीय – दर्शन – बृहत्कोश
 ४. भारतीय दर्शन के ५० वर्ष
- भारतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन